REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 1 | OCTOBER - 2018

भूमंडलीकरण और हिंदी कविता

प्रा. डॉ. राजेंद्र कैलास वडजे
सहा. प्राध्यापक– हिंदी विभाग , ए.आर. बुर्ला महिला महाविद्यालय, सोलापूर , महाराष्ट्र.

प्रस्तावना :

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में साहित्य की अन्य विधाओं की तरह काव्य विधा में भी प्रचुर मात्रा में परिवर्तन हुआ जो विविध आंदोलनों से सरोकार रखता है। हिंदी कविता विविध विषयों को लेकर गुजरती रही। इसी श्रृंखला में सन 1990 दशक के बाद हिंदी कविता वैश्वीकरण, उदारणीकरण, भूमंडलीकरण जैसे विषयों पर बहस करती हुई जन–मानस की आर्थिकता से जुडकर आधुनिक मानव जीवन पर प्रभाव निर्माण करने लगी। जिससे आम जनता के विचार और संस्कृति की संकल्पना ही परिवर्तित हुई। इस युग के कवियों ने अपनी कविताओं में बाजारवाद, वैश्विकीकरण, उपभोक्तावाद, विज्ञानवाद जैसे विषयों पर चिंतन शुरू किया जो आधुनिक युग की परिस्थितीजन्य उपज साबित होती है।

भूमंडलीकरण एक नया साम्राज्यवाद है। ''तकनीकि और संचार क्रांति ने विश्व को समेटकर विश्वग्राम या ग्लोबल विपेज में बदल दिया हैं, उसे ही भूमंडलीकरण कहते हैं।''[1]

अर्थात भूमंडलीकरण के कारण समग्र विश्व ही संचार क्रांति की चपेट में आकर बाजार की वस्तु मात्र बनकर रह गया है। जिससे हमारी प्रकृती, अस्मिता, भाषा और परंपरा ही अस्तित्वहीन बनकर बाजारवाद, उपभोक्ततावाद, आर्थिक साम्राज्यवाद एवं उत्तर आधुनिकतावाद की चुंगल में फँसकर रह गया है।

भूमंडलीकरण के शुरूवाती दौर में जन सामान्य के हित की बात जुडी थी लेकिन उसमें नीहित परिस्थितीयों को देखने से स्पष्ट होता है

कि भूमंडलीकरण के नाम पर साम्राज्यवादी और उपभोक्तावादी प्रवृत्ति को सभी पर थोपा जा रहा है, जिससे भारतीय संस्कृति की मूल पहचान नष्ट होती जा रही है। भूमंडलीकरण के बढते प्रभाव के कारण संकट की घडी से गुजरता हुआ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक परिवेश को लेकर सजग करते हुए हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में गिरीजाकुमार माथुर, भारत भूषण अग्रवाल, देवी प्रसाद मिश्र, राजेश जोशी, रामदरश मिश्र, मंगलेश डबराल, बदरीनारायण, लीलाधर जगुडी, रश्मी भारद्वाज, जया जादवानी, आनामिका आदि कवि मनिषियों ने अपनी कविता के माध्यम से प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

आधुनिक कवि रामदरश मिश्र भूमंडलीकरण की चपेट में आकर सिमटती हुई सांस्कृतिक पहचान के बारे में चिंता व्यक्त करते हुए अपनी ''विश्वग्राम'' कविता में कहते है कि,

''विश्वग्राम
कितना अच्छा लगा था यह शब्द
एक संगीत–सा गुँज उठा था मन में
वाह, कितनी सदियों के बाद
हमारा वसुधैव कुटुंबकम रूप ले रहा है
अब देश तो क्या

पूरा विश्व एक गाँव में परिणत हो रहा है।''[2]

अर्थात विश्वग्राम का स्वरूप धनिकों के व्यवसायिक स्वार्थ से जुडा हुआ है । जो एक भ्रम मात्र साबित होता जा रहा है।

भूमंडलीकरण के दौर में भारत के आर्थिक वातावरण के साथ सामाजिक–सांस्कृतिक वातावरण में परिवर्तन हुआ है। जिसका प्रभाव भारतीय साहित्य पर भी होना स्वाभाविक है।

इस दृष्टि से आधुनिक कवि भारतीय समाज में पनपता उपभोक्तावाद और उन्माद का वास्तविक रूप कवि राजेश जोशी ने पाठकों के सामने रखा है। वे पूँजिवादिता की बर्बरता को अंकित करते हुए कहते है की,

''जब तक मैं एक अपिल लिखता हूँ
टाग लग चुकी होती सारे शहर में
x x x x
x x x x
अपील छपने जाती है प्रेस में
दुकान जल चुकी होती है
मारे जा चुके जाते लोग।''[3]

कवि राजेश जोशी ने अपनी 'झिंगूर' कविता में भूमंडलीकरण के वास्तविक रूप को विडम्बनाओं के साथ व्यक्त करते हुए शासकों, पूँजिपतियों की विषमतावादी प्रवृत्तियों पर सीधा निशाना साधा है। जो सामाजिक–सांस्कृतिक एवं आर्थिक वास्तववाद को उध्दाटित करता है।

भूमंडलीकरण के नाम पर वैश्विकरण के युग में हमारी गौरवशाली सांस्ककृतिक परंम्परा को नष्ट करने के प्रयास किए जा रहे है, जिससे हमारी सांस्कृतिक विविधता पर बुरे असर के रूप में सिधा प्रभाव दिखाई दे रहा है। अपनी 'भूमंडलीकरण' कविता द्वारा मंगलेश डबराल लिखते है की– ''बडी तेजी से दुनिया बनती जा रही है एक बडा गाँव लोभ, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष के लिए कहीं और नहीं जाना पडता मनुष्य के संबंध बहुत पतले तारों से बाँध दिये गये है जो बात बात में टूट जाते है उन्हें जोडने के लिए फिर से जाना पडता है बाजार जहाँ तमाम स्वादिष्ट चीजे एक बेस्वाद जीवन को घेरे हुए है।''[4]

अर्थात वैश्विकरण के युग में हमारी उदात्त भारतीय संस्कृति मनुष्य के आपसी संबंधों को लेकर ईर्ष्या, द्वेष और क्रोध में परिवर्तित होकर बाजारवाद का शिकार बनने लगी है।

वैश्विकरण की प्रक्रिया में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने भी मानव समाज को अपना खरीददार बनाने के उद्देश से भूमंडलीकरण की व्यवस्था को जन्म दिया जिसमें हर मानव को उपभोक्ता की नजर से देखा जा रहा है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपने हित में मुनाफा संस्कृति को जन्म दे रही है। मानवों की भूख, गरिबी जैसी समस्याओं से उन्हें कुछ भी लेन–देन नहीं है। कवि बदरीनारायण इस संदर्भ में लिखते है कि–

''लाभ लाभ हिंस्त्र लाभ। लाभ से हिंसा, हिंसा से बाजार
शुभ–लाभ के संचयन से हो बलि। बीच बाजार में ठोकता ताल
अकेले–दुकेले नहीं, वह कईयों का समूह
बहुतों पर करता है राज
भूख, गरिबी को विश्व बाजार में बेचता
बेचता रूलाई और उदासी को काला बाजार में।''[5]

वैश्विकरण के पनपती होड में स्त्रियाँ पढ–लिखकर अर्थाजन में सक्षम होने लगी है। उनके पास आवश्यक धन आने के कारण सुंदरता को बढाने के चक्कर में पडी नजर आती है। जिसे परिणाम स्वरूप विविध सौंदर्य प्रसाधनों का उपयोग करने में लगी है। उनमें सुंदरता का विवके जागृत करने के लिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ क्रिम, पाउडर, साबन, कपडा, साडी, कॉस्मेटिक जैसी विविध वस्तुओं का विज्ञापन प्रस्तुत करके उन्हें

प्रभावित करने लगी है जिसका प्रभाव समाज में अधिक प्रमाण में हो रहा है। इस संबंध में कवि लिलाधर जगुडी लिखते है.

''जो सफल और सभ्य समाज में
साबुन, पाउडर, क्रीम हिंसक खिलौने में बदल जाती हैं
जिन्हें पुरानी स्त्री के मैल से पैदा नई स्त्रियाँ बेचती हैं
क्योंकि नई स्त्रियाँ ही आर्थिक स्त्रिया मान ली गई हैं
उनका विवके प्रायोजित विवेक हैं।''[6]

बजारवाद की निरंकुशता के कारण उदारीकरण, मुक्त व्यापार, उपनिवेशवाद, नयी नीतियाँ लेकर उपस्थित हैं। मानवीय उदात्तवाद का क्रय–विक्रय, व्यक्ति, देश, संस्कृति एवं लोकतंत्रात्मकता ने मानवीय जीवन को संकट में डाला है। आम आदमी को बुरी तरह धर–दबोचा है। भूमंडलीकरण ने भोगवाद को प्रोत्साहित किया है। परिणामतः परिवार एवं समाज में त्या तथा दायित्व जैसी भावनाएँ खत्म होकर अकेलापन, बैचेनी, नैराश्य आदि त्रासदियाँ बढने लगी और नातों–रिश्तों के संबंधों में शिथिलता एवं संवेदनहीनता का ग्रहन लगने लगा। इस बदलाव के प्रति सावधान रहने का इशारा करते हुए राजेश जोशी कहते है.

''कम हो रहा है मिलना–जुलना
क्म हो रही है लोगों की जान–पहचान
सुख–दुःख में भी पहले की तरह
इकट्टे नहीं होते लोग।''[7]

इक्कसवीं सदी में भूमंडलीकरण का दौर गतीमान हुआ है। जिससे एक समय में प्रकृति से प्रेम एवं श्रध्दा रखनेवाला मनुष्य सुखभोगी जीवन दर्शन का शिकार होकर बाजारवाद की आड में प्राकृतिक सुषमा का ऱ्हास करने में जुटा हुआ नजर आता हैं। स्मार्ट सिटी और व्यापक शहरीकरण को विकास का रूप मानकर पर्यावरण को उजाड बनानेवाले भूमंडलीकरण पर चिंता व्यक्त करते हुए कवि रश्मी भारतद्वाज लिखती है कि.

''विकास की बन्दुक से / निकलती गोलियाँ
धसती सबसे पहले / मिट्टी के माथे पर
जंगल की जाँघ पर / गाँव की पीठ पर
और चिडियों की आँख पर।''[8]

सारांशतः कहा जा सकता है कि भूमंडलीकरण के दौर में हमारी अतित की उदात्तवादी विरासत को खारिज किया जा रहा है। साथ में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, वैचारिक, प्राकृतिक पहुलों को प्रभावित तो कर दिया जिससे समग्र मानव समाज बेबस एवं बैचेन बनकर अपनी इंन्सानियत, संवेदना एवं मानवतावादी पहचान को संकटो से घिरा देख रहा हैं। अर्थात भूमंडलीकरण के दौर के कवि भूमंडलीकरण पर चिंता एवं चिंतन व्यक्त करते हुए मानव समाज को अपनी कविता के माध्यम से इन खतरों के प्रति सजग एवं सावधान करना चाहते है।

संदर्भ :–

1. भूमंडलीकरण और हिंदी कविता– डॉ. जोशेफ बाबू– अमन प्रकाशन, कानपूर, पृ. 157
2. स्मकालीन भारतीय साहित्य– संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी– जुलाई–अगस्त–2011, पृ. 91
3. आधुनिक हिंदी कविता के विविध आयाम– संपादक डॉ. अनिल पाटील– ए.बी.एस. पब्लिकेशन, वाराणसी, पृ. 91
4. समकालीन भारतीय साहित्य– संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी– जुलाई–अगस्त–2011, पृ. 156

5. समकालीन भारतीय साहित्य– संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी– जुलाई–अगस्त, पृ. 36
6. समकालीन भारतीय साहित्य– संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी– जुलाई–अगस्त, पृ. 25
7. आधुनिक हिंदी कविता के विविध आयाम– डॉ. अनिल पाटील– ए.बी.एस.पब्लिकेशन, वाराणसी, पृ. 437
8. नया ज्ञानोदय– संपादक लीलाधर मंडलोई– जून–2018, पृ. 80–81